

भारतीय ज्ञान परंपरा और विक्रमादित्यकथा उपन्यास

विकास कुमार¹, डॉ. सुभाष चन्द्र²

¹ शोधार्थी, भारतीय भाषा विद्याशाखा, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

² शोध निर्देशक, (आचार्य हिंदी), भारतीय भाषा विद्याशाखा, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

शोध सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन भारत की वह अविरोध धारा है, जिसने वैदिक काल से लेकर उपनिषद, पुराण और काव्य तक मानव जीवन के सभी पहलुओं को आलोकित किया है। यह परंपरा केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं रही, बल्कि विज्ञान, गणित, खगोल, चिकित्सा, भूगोल तथा सामाजिक व्यवस्था जैसे विषयों में भी अपनी गहरी छाप छोड़ती है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे सार्वभौमिक सिद्धांत प्रस्तुत किए, जिनका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संत कबीर, तुलसीदास और अन्य मध्यकालीन संतों ने अपने साहित्य में गुरु-शिष्य परंपरा, ब्रह्म ज्ञान और मानव-धर्म की व्यापक अवधारणाओं को प्रकट कर जनमानस तक पहुंचाया। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी कृत विक्रमादित्यकथा उपन्यास इस परंपरा की सशक्त अभिव्यक्ति है। इसमें प्रथम शताब्दी के भारतीय समाज, गुरुकुलीय शिक्षा, आयुर्वेद, उपनिषद, षोडश संस्कारों तथा भौगोलिक-सांस्कृतिक परिदृश्यों का सजीव चित्रण मिलता है। उपन्यास के संवादों में आत्मज्ञान, धर्मनिरपेक्षता और मानव कल्याण की धारणाएँ स्पष्ट होती हैं। विक्रमादित्यकथा न केवल भारतीय संस्कृति और परंपरा का पुनरावलोकन करती है, बल्कि यह आधुनिक समाज को भी अपनी जड़ों से जोड़ने का माध्यम बनती है।

मुख्य शब्द: भारतीय, ज्ञान, संस्कृत, हिंदी, आधुनिक

भूमिका

भारतवर्ष का इतिहास बहुत ही वैभवशाली एवं समृद्ध रहा है। प्राचीन भारत का अतीत इतना समृद्ध, व्यापक एवं गौरवशाली था कि भारत विश्वगुरु कहलाता था। यहाँ तक्षिला एवं नालंदा जैसे विश्वविद्यालय तथा स्थानीय स्तर पर अनेकों गुरुकुल होते थे जो शिक्षण केंद्र हुआ करते थे जहाँ विश्व-भर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने भारत आया करते थे, शिक्षण के इसी पद्धति को आधुनिक काल में भारतीय ज्ञान परम्परा के नाम से संबोधित किया जा रहा है जो आक्रान्ताओं के आगमन से पूर्व अपने शिखर की ओर तीव्र गति से पल्लवित हो रही थी। आक्रान्ताओं के आगमन ने इसकी गति को मंद अवश्य कर दिया किन्तु इस ज्ञान धारा पर पूर्णतः अंकुश लगाने में सफल नहीं हो पाए, इसका श्रेय संस्कृत साहित्य को जाता है जिसने इस ज्ञान परम्परा के अविरोध धारा को संरक्षित करने का कार्य किया। भारतीय ज्ञान परंपरा की इस निर्मल, निश्छल, अविरोध धारा का मूल स्रोत वैदिक काल है हालांकि अनुमानतः यह ज्ञान परम्परा इससे भी कहीं अधिक प्राचीन प्रतीत होती है क्योंकि प्राचीन गुरुकुलों में शिक्षा की पद्धति मौखिक थी जिसका काल निर्धारण कर पाना संभव नहीं है प्रत्येक सभ्यता की धरोहर वहां से सम्बद्ध ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक ग्रंथों में निहित होती है। यदि हम भारत के सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि सहस्रों ऋषि-मुनियों के कठोर परिश्रम, तपोबल और अनुसन्धान के परिणामस्वरूप ज्योतिष, खगोल विज्ञान, विज्ञान, गणित, भूगोल, भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान जैसे विषयों को वेदों, उपनिषदों, पुराणों, काव्य आदि के माध्यम से लोकजीवन व्यवहार में हस्तांतरित करने का सफल प्रयास किया जो आज भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है जैसे- सोलह संस्कार, भारतीय आयुर्वेद पद्धति, पंच महायज्ञ आदि। आधुनिक विषय विज्ञान और गणित का आधार भी भारतीय ज्ञान परंपरा ही है।

वहीं आधुनिक भौतिकी के सिद्धांत ऋषि कणाद कृत संख्य दर्शन से प्रभावित है। अतः इसमें कोई संशय नहीं है कि सभी आधुनिक विषयों की जननी संस्कृत वाङ्मय है। हिंदी को संस्कृत की पुत्री कहा जाता है क्योंकि इसका उत्तरोत्तर विकास लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक हिंदी तक पहुंचा है। वेद जहाँ सभी सभ्यताओं और संस्कृति का मूल है वहीं सभी भाषाओं का ज्ञान स्वरूप भी है। हिंदी आधुनिक भाषा होते हुए भी भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्वों को समाहित करते हुए अपने प्रगति पथ पर निरंतर अग्रसर है। हिंदी साहित्य के काव्यों, उपन्यासों, कहानियों, एकांकीयों, नाटकों, रिपोर्टाजों आदि विधाओं में भी भारतीय ज्ञान परम्परा के तत्व प्रचूर मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशाल महासागर के समान है जिसका मंथन कर अनेक ज्ञानरूपी बहुमूल्य रत्न प्राप्त किये जाते रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के चर्चा से पूर्व इसके शाब्दिक अर्थ को स्पष्ट कर लेना आवश्यक होगा। “भारतीय” शब्द उस विशेष भौगोलिक क्षेत्र का इंगित करता है जहाँ से इस ज्ञान धारा का उत्थान हुआ और यह विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हुई अर्थात् भारतवर्ष। “ज्ञान” शब्द संस्कृत के “ज्ञ” धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना, बोध होना, और अनुभव होना आदि। “ज्ञान” शब्द अपने आप में व्यापक है इसलिए इसकी व्याख्या विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से की है। प्राचीन भारतीय महर्षि जैमिनी (4 ई.पू -2 ई.पू) ने आने ग्रन्थ ‘पूर्व मीमांसा’ इसे परिभाषित करते हुए लिखते हैं – “सत्य स्वयं प्रकाशित होता है। इस दृष्टि से ज्ञान की उत्पत्ति अपने आप होती है। वह मनुष्य के मन में स्वयं उद्घाषित होता है क्योंकि सत्य और अतः हम कह सकते हैं कि ज्ञान वह माध्यम है जिसमें किसी तथ्य, वस्तु एवं अवधारणा को उसी रूप में समझा जाता है जिस रूप में वह विद्यमान है जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

“परम्परा” शब्द संस्कृत के “परम्पराः” से प्राप्त होता है जिसका अर्थ है वंश, संतति, अविच्छिन्न धारा आदि, यहाँ इस शब्द का अर्थ हमें अविच्छिन्न धारा ही ग्रहण करना चाहिए। ‘परम्परा’ अंग्रेजी शब्द ‘tradition’ की उत्पत्ति लैटिन शब्द ‘treditio’ से हुई है जिसका अर्थ है सौंपना यथा हस्तांतरित करना होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि परम्परा लम्बे समय तक संरक्षित होती रहती है साथ ही उनका हस्तांतरण भी होता रहता है और ये पूर्ण रूप से अपरिवर्तनीय नहीं होते समय अथवा कालानुसार इसमें परिवर्तन संभव है।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा अर्जित की गयी ज्ञान रूपी अमूल्य धरोहर का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होना ही भारतीय ज्ञान परम्परा कहलाया जो आधुनिक भारतीय समाज के स्मृति से विस्मृत होती जा रही है इसका शोध तथा प्रचार के माध्यम से परिष्करण एवं संवर्धन करना अति आवश्यक है वर्तमान भारतीय समाज शिक्षा के पश्चात्तिकाकरण के कारण इस ज्ञान परंपरा के मुख्य धारा से कटी हुई दिखाई देती है और इसके महत्व से अनभिज्ञ है। इस प्रस्तुत शोध-पत्र मुख्य का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परम्परा से अवगत कराना है और हिंदी साहित्य का भारतीय ज्ञान परम्परा से अटूट सम्बन्ध स्थापित करना है साथ ही प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी कृत हिंदी उपन्यास “विक्रमादित्यकथा” में भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रमुख तत्वों का शोधन करना भी है।

हिंदी साहित्य और भारतीय ज्ञान परम्परा

हिंदी वर्तमान भारत के अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है, हिंदी में समावेशिता का गुण इसके जन्म से ही विद्यमान था। इसने बहुल मात्रा में संस्कृत शब्दावली को ग्रहण किया यही कारण है कि हिंदी का संस्कृत से निकट सम्बन्ध है। इसी का परिणाम है कि भारतीय ज्ञान परम्परा की जो अविरल धारा संस्कृत वाङ्मय में संरक्षित हुई वह हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर बन गयी, समय-समय पर हिंदी साहित्यकारों ने अपने काव्यों, कहानियों, नाटकों, रिपोर्टाजों इत्यादि में इसकी अभिव्यक्ति होती रही है। भारतीय ज्ञान परम्परा का सर्वाधिक प्रभाव हिंदी के मध्यकालीन साहित्य पर परिलक्षित होता है इसमें कबीर, तुलसीदास, दादू दयाल और मलूकदास अग्रिणी दिखाई देते हैं।

संत कबीर मध्यकलीन भारत के हस्ताक्षर कवि रहे हैं ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे हालांकि ये शिक्षित नहीं थे जिसकी पुष्टि करते उन्होंने अपने एक दोहे में इस प्रकार की है – ‘मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ’ तथापि वह भारतीय दर्शन, विज्ञान, वेद, उपनिषद आदि के अच्छे जानकार थे वेदों और उपनिषदों में ब्रह्मा को अविनाशी, सर्वव्यापी, निर्गुण तथा निराकार के रूप में अभिव्यक्त किया गया है संत कबीर ने भी ब्रह्मा को इसी रूप में व्यक्त किया है –

“जल मै कुम्भ कुम्भ मै जल है बाहर भीतर पानी ।

फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तथ कह्यौ गयानी ॥¹”

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षण व्यवस्था में गुरुकुलों में गुरु द्वारा शिष्यों को शिक्षित किया जाता था। गुरुकुल ही शिक्षा के प्रमुख केंद्र हुआ करते थे और गुरुओं को ईश्वर के समान ही पूजनीय माना जाता था इसलिए कबीर गुरु की महत्ता को बताते हुए कहते हैं –

“गुरु बिन चेला ज्ञान न लहाई ।

गुरु बिन इह जग कौन भरोसा, काके संग है रहिए ॥²”

तुलसीदास गुरु की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं-

“कौतुक देखि चले गुरु पाहिं ।

जानि विल्वुं त्रास मन माहीं ॥

जासु त्रास डर कहूं डर होई ।

भजन पूमाउ सवावत सोई ॥³”

भारतीय ज्ञान परंपरा में ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ की अवधारणा मानव-मानव में भेद करना नहीं सिखाता एक सहजीवी जीवन के सिद्धांत को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार पूरा विश्व ही हमारा परिवार है। कबीर इसके प्रबल समर्थक है वह लिखते हैं-

“साई इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाए

मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए ॥⁴”

इसी प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्यकार जयशंकर प्रसाद कार्नेलिया के माध्यम से अपने नाटक ‘चन्द्रगुप्त’ में यह सन्देश देते हैं-

“अरुण यह मधुमय देश हमारा ।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥⁵”

‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ भारतीय ज्ञान परम्परा की यह अवधारणा मनुष्य को स्वार्थपरकता से बचाने तथा सभी को रोगमुक्त रहने की कामना से लिखा गया है क्योंकि समस्त विश्व ही हमारा परिवार है इसलिए उन सभी के मंगल होने की कामना करते हैं, इसकी व्याख्या जयशंकर प्रसाद ‘कामायनी’ महाकाव्य में इस प्रकार करते हैं –

“औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ,

अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।¹⁶”

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्यकारों ने भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रमुख अवधारणाओं एवं ज्ञान को जनमानस तक पहुंचने का सराहनीय कार्य किया है साथ ही जनमानस को भारतीय ज्ञान परम्परा से जोड़े रखने के लिए अथक प्रयास किया है जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी आक्रमणकारियों एवं औपनिवेशवादियों के लाखों प्रयास के बाद भी भारतीय ज्ञान परम्परा के निर्मल धारा को अवरुद्ध करने में सफल नहीं हो पाये और आज भी भारतीय समाज पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

विक्रमादित्यकथा उपन्यास और भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी कृत ‘विक्रमादित्यकथा’ उपन्यास भारतीय ज्ञान परम्परा की स्पष्ट अभिव्यक्ति करता हुआ एक ऐतिहासिक उपन्यास है। प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत और हिंदी के प्रसिद्ध कवि, आलोचक, नाटककार, कथाकार और उपन्यासकार हैं, ये प्रारंभ से ही संस्कृत साहित्य से जुड़े रहें हैं। इन्होंने संस्कृत साहित्य में अनेकों काव्यों, नाटकों, उपन्यासों आदि का सृजन कार्य किया है इसी के परिणामस्वरूप प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी और भारतीय ज्ञान परम्परा के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उनके द्वारा रचित उपन्यास ‘विक्रमादित्यकथा’ में हुई है। ‘विक्रमादित्यकथा’ उपन्यास की पृष्ठभूमि प्रथम ई. के भारतीय समाज का चित्रण करता है, यह उपन्यास शकों के आक्रमण को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में गुरुकुलीय शिक्षण व्यवस्था, आयुर्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, भारतीय संस्कार, भौगोलिक चित्रण आदि विषयों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

जैसाकि पूर्व में चर्चा की गयी है कि प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख केंद्र हुआ करते थे और गुरु-शिष्य परम्परा गुरुकुलों का मूल सिद्धांत था। यहाँ शिष्यों को स्वच्छंद पर्यावरणीय वातावरण में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया जाता था। ‘विक्रमादित्यकथा’ उपन्यास में इसकी झलक प्रथम परिच्छेद में ही देखने को मिल जाता है, जब विक्रमादित्य अपने बालपन में खेलते हुए आश्रम के निकट पहुँच जाता था उसका सुन्दर वर्णन करता है- “गुरुदेव के दर्शन तो प्रायः बाहर ही हो जाते थे, वे किसी शिलापट्ट पर या किसी कुंज में अन्तेवासियों (छात्रों) को कुछ सिखाते-समझाते दिख जाते। कितना पावन प्रशान्त और आश्चर्य करता हुआ विग्रह। नर्मदा की लहरें उनके आगे उछल रही थीं।¹⁷”

गुरुकुलों में शिक्षा प्रायः मौखिक हुआ करती थी इसका एक सुन्दर उदाहरण हमें गुरु वामदेव और शिष्य विष्णुदेव के संवाद से तब प्राप्त होता है जब गुरु वामदेव अपने शिष्य विष्णुदेव से तैत्तिरीय उपनिषद् के पाठ के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं-“विष्णुदेव, तुम्हारा तैत्तिरीय उपनिषद् का पाठ कहाँ तक हुआ?”

"कल तक शिक्षावल्ली समाप्त की है भगवन्। अब उपदेश वल्ली आरम्भ की है, पर इसमें कुछ समझ में आया नहीं।"

"क्या समझ में नहीं आया सौम्य?"

"भगवन्, उपनिषद् बार-बार कहता है कि अपने को जानो। अपने को जानना ही सबसे दुष्कर है। तो हम अपने आपको कैसे जानें?"

"अपने को तो अपने से ही जानना होता है सौम्य! अन्यथा हम कैसे जान सकते हैं?"

"पर अपने को अपने से कैसे जान सकते हैं आचार्य ? उपनिषद् ही यह भी तो कहती है कि जो जानने वाला है वह अपने को किससे जानेगा, जो देखने वाला है वह अपने को किससे देखेगा ? आँखें अपने आपको कैसे देख सकती हैं? फिर अपने को जानने की पद्धति क्या होगी भगवन्!"

"आँखें भी अपने आपको दर्पण में देख सकती हैं सौम्य!" मुनि वामदेव ने कहा, "कर्म के दर्पण में हम अपने को पहचानते हैं। हमारा कर्म हमारा दर्पण ही नहीं, उसमें हम अपने को परिभाषित भी करते हैं।⁸"

गुरुकुलों में अनेक विषयों का पठन-पाठन किया जाता था विक्रमादित्यकथा में इसका उल्लेख किया गया है- "महर्षि वामदेव के आश्रम में चतुष्टयी (चार वेद) और आन्वीक्षिकी के साथ वार्ता (कृषि और पशुपालन तथा विभिन्न जिल्प) का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। और अवैदिक दर्शनों की जानकारी दी जाती थी। आयुर्वेद, रथचर्या और मल्लविद्या और धनुर्वेद में तो यहाँ के अन्तेवामी पारंगत होकर निकलते थे।⁹"

अतः यह स्पष्ट है कि शिक्षा केवल औपचारिक नहीं थी अपितु व्यावहारिक भी थी जो मनुष्य को एक सभ्य समाज के निर्माण में सहभाहिता के साथ-साथ जीविकोपार्जन में भी सहायक बनाती थी।

भारतीय ज्ञान परम्परा में षोडश संस्कारों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, ये आज भी भारतीय समाज में रचे-बसे हैं नामकरण, अन्नप्राशन जैसे संस्कार भारतवासियों के जीवन का अभिन्न अंग है, इस उपन्यास में सीमान्तोन्नयन संस्कार (महिला के गर्भवती होने के दौरान किया जाने वाला संस्कार) तथा अन्नप्राशन संस्कार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है- "गर्भ का पाँचवाँ मास था देवी वसुमती को। वह ऐसी लता की तरह लगती थीं, जिसके पुराने पने झर चुके हों और जिसमें अचानक नयी कोपलें फूट पड़ी हों। पुष्पमालाओं, कटक, केयूर, मुक्तामालाओं से अलंकृत सौभाग्यवती नारियाँ महारानी वसुमती के आसपास बैठी थीं। इनमें अमात्यों की भार्याएँ भी थीं। रानी के मुख पर आभा बिखरी हुई थी। ओठों पर हल्की मुस्कान थी। आँखों में अनुराग का सागर लहरा रहा था। कितने वर्षों की प्रतीक्षा के बाद यह सुदिवस आया था। मन्त्रपाठ हो रहा था। दूसरी ओर द्विपदी (दो चरणों का गीत) का गायन हो रहा था, उसके साथ चर्चरी (गीत सहित एक नृत्त) का उल्लास निरन्तर धूम मचाये हुए था (प्रहारदत्त राजहंस से कह रहे थे कि अगले महीने ही उन्होंने अपने दोनों बेटों अपहार और उपहार का अन्नप्राशन रखा है।¹⁰"

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवधारणा को भी अभिव्यक्त किया गया है जब गुरु वामदेव अपना मत प्रकट करने के लिए अथर्ववेद का सन्दर्भ देते हुए कहते हैं – "मैं तो चाहता हूँ कि सभी धर्म, मत और पन्थ इस महादेश में फलें-फूलें, इसी में मानवता का कल्याण है। अथर्ववेद में कहा है, 'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्'- यह धरती विभिन्न धर्मों को मानने वाले और विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले मनुष्यों को उसी तरह अपने ऊपर बसाये हुए है जैसे एक घर में। मैं वैदिक मत में आस्था रखता हूँ।¹¹"

'विक्रमादित्यकथा' में प्राचीन भारत के बहुत सुन्दर भौगोलिक चित्रण के साथ-साथ प्राचीन भारतीय देवी देवताओं का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जब विष्णुदेव महाराज राजहंस के साथ यात्रा करते हुए आंध्रप्रदेश के निकट पहुँच जाते हैं- "कावेरी के किनारे है कावेरीपत्तन। यह चोलों की राजधानी है। पत्तिनम्, पुकार और काकन्दी भी इसी के नाम हैं। इसी के पास है पोत्तिडल पहाड़, जिस पर अगस्त्य मुनि ने वास किया था। संस्कृत के कवियों ने इसका वर्णन मूलयाचल के नाम से किया है। यह चन्दनाद्रि है। पाण्ड्य राजाओं को मलध्वज भी इसी के कारण कहा गया। इसी पर्वत के पास सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) का मन्दिर है। हमने वहाँ भगवान् कार्तिकेय के दर्शन किये। उनके छह मुख हैं, और रंग लाल है। वालियोड के नाम से बलदेव या बलराम की पूजा भी यहाँ खूब होती है। उनका रंग शुक्ति की तरह शुभ्र है। विष्णु को नेटियोड कहते हैं।¹²"

उपर्युक्त संदर्भों से हमें भारतवर्ष के गौरवशाली अतीत की एक झांकी देखने को मिलती है साथ ही भारतीय शिक्षण पद्धति, भारतीय संस्कार, गुरु-शिष्य परम्परा आदि विषयों का ज्ञान भी होता है जो भारतीय ज्ञान परम्परा के अभिन्न अंग रहें हैं, प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी कृत विक्रमादित्य उपन्यास में प्रचुर मात्रा में भारतीय ज्ञान परम्परा के तत्वों को समाहित कर उनको संरक्षित किया गया है। यह उपन्यास प्राचीन भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है, यह उस काल को प्रदर्शित करता है जब संस्कृत भाषा के रूप में प्रचलन में थी।

भारतीय ज्ञान परंपरा महत्त्व एवं उपयोगिता

भारतीय ज्ञान परंपरा एक ऐसी अविरल धारा है, जिसने वैदिक काल से लेकर उपनिषद, पुराण और दर्शन तक मानव जीवन के हर पहलू को आलोकित किया है। यह परंपरा केवल धर्म या दर्शन तक सीमित नहीं रही, बल्कि गणित, खगोल, चिकित्सा, राजनीति, समाजशास्त्र और साहित्य में भी अपनी सशक्त छाप छोड़ती है। यही कारण है कि प्राचीन भारत को विश्वगुरु कहा जाता था। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय, गुरुकुलों की पद्धति तथा गुरु-शिष्य परंपरा इसके सजीव उदाहरण हैं, जहाँ विश्वभर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे।

पश्चिमी देशों ने प्रारंभ से ही भारतीय ज्ञान परंपरा को नकारने का प्रयास किया, किंतु यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उनकी अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियों की नींव भारतीय सिद्धांतों पर आधारित है। आज जिन सिद्धांतों को पश्चिमी विज्ञान आधुनिक आविष्कार बताकर प्रस्तुत करता है, उनका मूल हमारे वेदों और उपनिषदों में विद्यमान है। खगोल विज्ञान, अंकगणित, आयुर्वेद और योग के अनेक सिद्धांत भारतीय ग्रंथों से ग्रहण किए गए हैं। दुख की बात यह है कि पश्चिम ने इन्हें अपना बताकर पेटेंट करवाया, और भारतीयों को अंधविश्वासी या केवल साँपों की पूजा करने वाले तक कह डाला।

आज की वैज्ञानिक प्रगति भी इस बात की गवाही देती है कि भारतीय ऋषियों का चिंतन केवल आध्यात्मिक नहीं बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी गहन था। उदाहरणस्वरूप, भौतिकी में परमाणुओं का सिद्धांत जहाँ आधुनिक विज्ञान में अपेक्षाकृत नया है, वहीं यह विचार हजारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन में स्पष्ट रूप से मिलता है। इसी प्रकार आयुर्वेद के सिद्धांत आज भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

आधुनिक युग में मधुमेह, रक्तचाप, पथरी और अन्य रोगों का उपचार अंग्रेजी दवाओं से किया जाता है, किंतु यह दवाएँ अक्सर स्थायी समाधान देने में असमर्थ रहती हैं। जबकि आयुर्वेदिक पद्धति में इन रोगों के मूल कारण का निवारण करने की क्षमता है। यही नहीं, आज की भागदौड़ भरी जीवनशैली ने मानसिक रोगों जैसे तनाव, अवसाद और चिंता को बढ़ा दिया है। इन समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ समाधान योग और ध्यान है। योग केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि मानसिक शांति और आध्यात्मिक संतुलन प्रदान करता है। यही कारण है कि विश्व ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया और संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को "अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस" घोषित किया। यह भारतीय ज्ञान परंपरा की वैश्विक मान्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं बल्कि जीवन को समग्रता में देखना और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे सिद्धांतों को व्यवहार में उतारना है। यह परंपरा हमें बताती है कि विश्व एक परिवार है और मनुष्य का कर्तव्य केवल अपने सुख तक सीमित न रहकर सबके कल्याण में निहित है। दुर्भाग्य से शिक्षा के पाश्चात्यकरण ने भारतीय समाज को इस धरोहर से दूर कर दिया है। परिणामस्वरूप हम अपने गौरवशाली अतीत को केवल श्लोक या परंपरा भर मानकर उपेक्षित करते हैं, जबकि आवश्यकता इसे पुनर्जीवित करने की है।

आज जब पश्चिमी जगत भारतीय तत्वों को अपनाकर प्रगति कर रहा है, तब हमारे लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी धरोहर को नए दृष्टिकोण से देखें। हमें शोध, गोष्ठियों और जनजागरूकता के माध्यम

से इस ज्ञान परंपरा को समाज तक पहुँचाना होगा। तभी हम अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर सकेंगे और भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने की दिशा में आगे बढ़ पाएँगे।

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता यह है कि यह समय और परिस्थिति के अनुसार अनुकूलन करती है। यह कोई स्थिर और जड़ व्यवस्था नहीं बल्कि एक जीवंत और लचीली धारा है, जिसने हर युग में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध की है। आधुनिक शिक्षा नीति (NEP-2020) भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जिसमें भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान की बात की गई है। यदि हम इस अवसर का सही उपयोग करें तो आने वाली पीढ़ियों को एक स्वर्णिम भविष्य सौंप सकते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा एक अविरल धारा है, जिसका उद्गम वैदिक काल से माना जाता है और जो आज भी मानव जीवन के लिए प्रासंगिक बनी हुई है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल धार्मिक या आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि विज्ञान, गणित, खगोल, चिकित्सा, समाजशास्त्र, राजनीति, साहित्य और दर्शन जैसे विविध क्षेत्रों में समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान देती है। यही कारण है कि इसे मानव जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान कहा जा सकता है। आधुनिक विज्ञान जहाँ सीमित और संकीर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा व्यापक और असीम दृष्टि प्रदान करती है। इसमें “वसुधैव कुटुम्बकम्” और “सर्वे भवन्तु सुखिनः” जैसे सिद्धांत निहित हैं, जो मानवता के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं।

वर्तमान समय में जब पश्चिमी देश भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरणा लेकर नए-नए आविष्कारों को अपनी उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, तब हमारे लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी धरोहर की पहचान करें और इसे पुनर्जीवित करें। योग और आयुर्वेद जैसी विधाओं ने न केवल भारत बल्कि संपूर्ण विश्व को स्वास्थ्य और संतुलित जीवन का मार्ग दिखाया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) ने इस परंपरा को पुनः शैक्षिक मुख्यधारा में लाने का जो प्रयास किया है, उसमें समाज की सक्रिय सहभागिता अनिवार्य है। यदि हम सब मिलकर इस दिशा में प्रयास करें तो भारत पुनः अपने गौरवशाली अतीत को प्राप्त कर विश्वगुरु बनने की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, साहित्यागार प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जयपुर, 2009, पृ. सं. 161।
2. वही, पृ. सं. 32।
3. तुलसी और मूल्य-शिक्षा, डॉ. राम शकल पाण्डेय, अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 2007, पृ. सं. 32।
4. वही, (पुरोवाक)।
5. चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, बाल-सुलभ प्रकाशन, संस्करण 2008, नई दिल्ली, पृ. सं. 72।
6. कामायनी-परिशीलन, नन्दकिशोर नवल, अनुपम प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पटना, 2001, पृ. सं. 71।
7. विक्रमादित्य कथा, राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण, नई दिल्ली, 2016, पृ. सं. 23।
8. वही, पृ. सं. 24-25।

9. वही, पृ. सं. 28 ।
10. वही, पृ. सं. 37 ।
11. वही, पृ. सं. 40 ।
12. वही, पृ. सं. 63 ।